Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

स्वराज्य एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महात्मा गाँधी की भूमिका : एक अध्ययन

डॉ0 रेखा कुमारी
एम.ए., पीएच.डी. (इतिहास)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर (बिहार)

यों तो 1930-34 का सविनय अवज्ञा आन्दोलन महात्मा गाँधी के स्वराज्य की सामाजिक एवं आर्थिक अवधारणाओं के तहत ही शुरू किया गया और उसी दिशा में उसका संचालन किया गया, पर भारतीय राष्ट्रीय जीवन से जुड़ी अन्य सामाजिक-आर्थिक अवधारणाएँ भी इस दिशा में सहायक हुई थी। इसका विश्लेषण सुमित सरकार से किया है। उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए मंदी का विश्लेषण करते हुए कहा है कि 1929 के अंत में आनेवाली विश्वव्यापी मंदी ने भारत को मुख्यतः दो रूपों में प्रभावित किया था : एक तो कीमतों में, विशेष रूप से कृषि उत्पादों की कीमतों में, तीव्र गिरावट लाकर, और दूसरे, संपूर्ण निर्यात पर आधारित औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में गंभीर संकट उत्पन्न करके। अखिल भारतीय सामान्य मूल्य सूचकांक (1873-100), जो 1929 में 203 था, 1930 में गिरकर 171 हो गया और फिर 1931 में 127, 1932 में 126, 1933 में 121 और 1934 में 119 रह गया। इसके बाद, इसमें थोड़ी वृद्धि हुई और यह 1937 में 136 हो गया। वस्तुतः कृषि उत्पादों की कीमतें तो 1926 से ही गिरनी आरंभ हो गई थीं, किंतु 1930 के बाद आनेवाली गिरावट भारत के लिए घातक सिद्ध हुई। कपास का अखिल भारतीय मूल्य (187-100), जो 1929 में 133 था, 1931 में गिरकर मात्र 70 रह गया। बंगाल में सर्दियों का चावल (1929-100) 1932 में 45.9 तक गिर गया और 1934 तक पटसन 43.5 ही रह गया। संयुक्त प्रांत में थोक मूल्य (1901-05-100)

SHISRRJ203354 | Received : 01 Aug 2020 | Accepted : 10 Aug 2020 | July-August 2019 [3 (4) : 40-44]

1929 के 218 से गिरकर 1930 में 162, 1931 में 112, 1934 में 103 रह गये।

मंदी ने राजस्व, लगान और ब्याज के भुगतान के बोझ को अत्यंत बढ़ा दिया था, और इसका सबसे बुरा प्रभाव पड़ा था उन 'मध्यवर्गीय' किसानों पर जो अपेक्षाकृत समृद्ध थे और जिनके पास बेचने के लिए अतिरिक्त उपज थी। (यह 1918 के पश्चात् होनेवाली मुद्रास्फीति से भिन्न था, जब निर्धन वर्ग सर्वाधिक प्रभावित हुए थे) 1930 के दशक में सैनिक लामबंदी की जो जानकारी उपलब्ध है, वह इस आर्थिक स्थिति में बिल्कुल ठीक बैठती है। कांग्रेस भूमिधर किसानों और छोटी जोतवाले काश्तकारों को लामबंद करने लगी थी। जिन मुद्दों को लेकर इन्हें संगठित किया जा रहा था वे थे–राजस्व, सिंचाई शुल्क, और लगान एवं कर्ज के बोझ में कमी, बेदखल की गई जमीन की वापसी, या उस समय का सबसे जुझारू नारा–जमींदारी उन्मूलन। यह आंदोलन असहयोग के क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक फैला और इसने कहीं अधिक स्थिर संगठनों की स्थापना की, किंतु इसमें मुख्यतः 1919–22 के समय की स्वर्णयुगवाली स्फूर्त और आदिम भावना का अभाव था। ऐसी स्पष्टतः कृषक माँगों को भी अपना समर्थन देने में कांग्रेस को संकोच होता था, क्योंकि उसके संबंध जमींदारों से भी थे। जैसा कि हार्डीमन ने दर्शाया है, धनी किसानों में रूढ़िवादिता की प्रवृति बढ़ती जा रही थी, विशेष रूप से गुजरात जैसे क्षेत्र में, जिसके फलस्वरूप बारदोली के नायक वल्लभभाई पटेल अंततः दक्षिणपंथी कांग्रेस के सबसे बड़े नेता के रूप में उभरे।

मंदी के कारण भारतीय निर्यात का मूल्य 1929–30 के 311 करोड़ रू० से गिरकर 1932–33 में 132 करोड़ रू० रह गया। (इसी अवधि में आयात भी 241 करोड़ रू० घटकर 133 करोड़ रू० रह गया था।) और घरेलू मदों की पूर्ति करने का एक ही उपाय था–भारतीयों द्वारा संकटकालीन बिक्री से सोने का भारी निर्यात करना। लंकाशायर के व्यापार में ऐसा संकट उत्पन्न हो गया था जिसकी दिशा नहीं मोड़ी जा सकती थी : 1929–30 में इंग्लैंड से कपड़े के थानों का आयात 12,480 लाख गज था मगर यही 1931–32 में गिरकर 3,760 लाख गज ही रह गया और स्थिति में कुछ सुधार के बाद 1930–40 में 1,950 लाख गज ही रह गया था।

1930 के दशक में पूँजीवाद की वृद्धि का तात्पर्य अपरिहार्य रूप में कामगार वर्ग के लिए बोझ का बढ़ना था। काम की परिस्थितियाँ पहले ही अत्यंत खराब थीं, और वे बारंबार (1928–29) और फिर 1934) चलाई जानेवाली 'अभिनवीकरण' की मुहिमों, पारिश्रमिकों में कटौती और बैठकों के कारण और भी बदतर हो गई थीं। इसके परिणामस्वरूप होनेवाला श्रमिक असंतोष 1928–29 में चरम सीमा पर पहुँच गया। 1928 में 203 हड़तालें और तालाबंदियों हुई, जिससे 5,06,851 कामगार प्रभावित हुए और 3,16,47,404 कार्यदिवसों की हानि हुई। श्रमिक संघर्ष और आम राष्ट्रीय आंदोलन के चरमबिंदुओं का कभी संयोग नहीं हुआ। यह एक ऐसा अलगाव था जो कदाचित् हमारे देश के आधुनिक इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

जहाँ ब्रिटने एवं पूँजीवादी विश्व–अर्थव्यवस्था के साथ कमजोर पड़ते संबंध देशी उद्योग की वृद्धि में सहायक हुए, वहीं कृषि के क्षेत्र में जारी गहरी मंदी ने इस वृद्धि को प्रभावहीन कर दिया। शिव सुब्रमणियम की गणना से 1930 के दशक में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में गिरावट का पता चलता है और 1920 के दशक से होनेवाले महत्वपूर्ण जनसंख्यात्मक परिवर्तनों ने समस्याओं को और बढ़ा दिया। 1901 और 1921 के बीच जनसंख्या में दो करोड़ हो गई थी। 1931 और 1941 की जनसंख्या क्रमशः 33.8 करोड़ और 38.9 करोड़ थी, अर्थात् लगभग समान समय में 8 करोड़ की वृद्धि हुई। आर्थिक गतिरोध और जनमानस की दरिद्रता भारत में उपनिवेशवाद के अंतिम चरण की विशेषताएँ बनी रहीं। स्थिर मूल्यों (1938–39) के आधार पर प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 1916–17 में 60. 4 रू0 और 1946–47 में केवल 60.7 रू. आँकी गई है।

पूरी तरह गोरों पर आधारित साइमन आयोग की घोषणा (8 नवम्बर 1927) का भारतीय राजनीति पर दोहरा और कुछ परस्पर विरोधी प्रभाव रहा। इस जान–बूझकर किए गए अपमान से सभी आहत हुए। बर्केनह्वेड के इस ताने ने जले पर नमक का कार्य किया कि भारतीय किसी भी व्यावहारिक राजनीतिक योजना पर एकमत होने में अक्षम हैं। सप्रू जैसे उदारवादी राजनीतिज्ञ और जिन्ना के नेतृत्व में मुसलमान नेताओं ने कांग्रेस के साथ मिलकर डोमिनियन स्टेटस का संविधान बनाने का प्रयास किया, किंतु सांप्रदायिक मतभेदों ने 1928 के अंत तक ऐसे उदारवादी समूहों के संयुक्त मोर्चे को तोड़ दिया। मगर उसी समय साइमन आयोग के बहिष्कार का आंदोलन जुझारू शक्तियों की तीव्र वृद्धि में

सहायक हुआ। ये शक्तियाँ न केवल पूर्ण स्वाधीनता की, बल्कि समाजवादी दिशा में अनेक सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों की भी माँग कर रही थीं।

बाद में, जब सर्वदलीय सम्मेलन ने जयकर के दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया तो उसे जिन्ना ने 'रास्तों का अलग हो जाना' कहा था। शायद इसमें पर्याप्त अतिशयोक्ति है : 1927 के प्रस्ताव पर राजनीतिज्ञों की सहमति सांप्रदायिक टकराव की सामाजिक, आर्थिक एवं विचारधारात्मक जड़ों को गहराई से प्रभावित नहीं करती, और अगर मुस्लिम पाँच प्रांतों में बहुमत के बदले अलग निर्वाचकमंडलों की माँग छोड़ देते तो आवश्यक नहीं था कि उनकी राजनीतिक पहचान की भावना समाप्त या कमजोर हो जाती। किन्तु, दो वर्ष पश्चात् सविनय अवज्ञा आंदोलन से अधिकांश मुसलमान नेताओं के अलग रहने और उनमें वैर भाव उत्पन्न करने में 1928 में होनेवाले अलगाव का निश्चित रूप से योगदान था। और यह पहली और अंतिम बार नहीं था जब हिंदू संप्रदायवाद ने संकट की घड़ी में साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर किया था।

सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की स्थापना की समस्या को हल करने के असफल प्रयास के अतिरिक्त नेहरू रिपोर्ट इस कारण भी स्मरणीय है कि यह देश के लिए संवैधानिक ढॉचें का प्रारूप तैयार करने का भारतीयों का पहला बड़ा प्रयास था, जिनमें केंन्द्र और प्रांतों के विषयों की संपूर्ण सूची के साथ मौलिक अधिकारों का भी उल्लेख था। सर्वदलीय सम्मेलन जैसे नरमदलीय प्रयास के लिए यह स्वभाविक ही था कि इस रिपोर्ट में केन्द्र और प्रांतों, दोनों में उत्तरदायी सरकारों की माँग करते हुए भी पूर्ण स्वाधीनता की माँग नहीं की गई थी जिससे कांग्रेस के युवा जुझारू सदस्यों को बड़ा क्षोभ हुआ था। ऐसे युवा सदस्यों की संख्या बढ़ रही थी और उनमें मोतीलाल के पुत्र तेजी से प्रमुखता प्राप्त करते जा रहे थे। मगर इसमें बिना लिंग भेद के स्त्रियों और पुरूषों, दोनों के लिए सार्वत्रिक वयस्क मताधिकार की बात अवश्य उठाई गई थी। यह ऐसी बात थीं जो 1947 तक अंग्रेजों द्वारा भारत को बनाए गए किसी संविधान में नहीं स्वीकार की गई थी। यह बात प्रायः दोहराए जानेवाले इस तर्क पर एक अर्थपूर्ण टिप्पणी है कि भारतीय राष्ट्रीय नेता तो अभिजनवादी थे, जबकि अंग्रेज शासक जनसामान्य के हितों की रक्षा के प्रयास कर रहे थे।

सबसे बढ़कर यह कि यद्यपि बोस और जवाहरलाल, दोनों ने ही ऐसे सविनय अवज्ञा आंदोलन की कल्पना की थी जिसकी चरम परिणति आम हड़तालों में होती,

मगर तय यह हुआ कि आगे उठाए जानेवाले कदमों के कार्यक्रम की योजना अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी बनाएगी। इसका अर्थ यह था कि यह कार्यक्रम गाँधीजी ही बनाएँगे। इन सब सीमाओं के होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि संसार के सबसे बड़े उपनिवेश में साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन अब गुणात्मक रूप से एक नए चरण में प्रवेश कर रहा था। अखिरकार नए वर्ष की पूर्व वेला में कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वराज्य का नारा अपना ही लिया और न केवल 'वंदे मातरम्' बल्कि 'इंकलाब जिंदाबाद' के नारों के बीच राष्ट्रीय तिरंगा लहराया गया। अनेक को ऐसा लग सकता है कि गाँधीजी क्रांतिकारी युवकों एवं समाजवादियों के दबाव में आकर पूर्ण स्वराज्य तथा इंकलाब को स्वीकार कर रहे थे। वस्तुतः बात उल्टी है। गाँधीजी अपने उद्देश्य में इनसे कही अलग नहीं थे। वे तो सिर्फ उन्हें अपने रास्ते पर ला रहे थे।

संदर्भ सूची :

1. सी.जे. बेकर, पॉलिटिक्स ऑफ साउथ इंडिया, 1920–37, पृ. 174, बी0बी0 चौधरी, 'दि प्रोसेस ऑफ डिपेजेंटाइजेशन इन बंगाल एंड बिहार, 1885–1947' इंडियन हिस्टॉरिकल रिव्यू, जुलाई 1975, पृ. 117; ज्ञान पांडे दि एसेंडेंस ऑफ दि कांग्रेस इन यू.पी., 1926–34, ऑक्सफोर्ड–1984, पृ. 160.
2. सुमित सरकार, पूर्वोक्त, पृ. 296–97.
3. क्लॉड मार्कोविट्ज, इंडियन बिजनेस एंड नेशनलिस्ट पॉलिटिक्स, पृ. 19–20.
4. अमिय बागची, पृ. 238.
5. सुमित सरकार, पूर्वोक्त, पृ. 300.
6. वही.
7. वही
8. वही, पृ0 303
9. सुमित सरकार, पूर्वोक्त, पृ. 324.